Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

हिन्दू विधि (लॉ) के प्राचीन स्रोत के रूप में श्रुतियों और स्मृतियों का महत्त्व

डॉ. सर्वेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
के.एन.आई.पी.एस.एस.,
सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 145-150
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 10 Oct 2020
Published : 20 Oct 2020

सारांश – हिन्दू विधि एक–दो सदी में विकसित होने वाली विधि नहीं है। बल्कि यह काल के प्रवाह के साथ वैदिक युग से निरन्तर चली आ रही प्रक्रिया है। समाज में होने वाले बदलाव और सामाजिक आवश्यकतानुरूप इसमें अनेकानेक परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान हिन्दू विधि के संहिताबद्ध हो जाने पर भी कुछ विषयों (जो आज भी असंहिताबद्ध हैं) के सन्दर्भ में आज भी स्मृतियाँ और टीकायें प्रामाणिक बनी हुयी हैं।

मुख्य शब्द – हिन्दू विधि, श्रुति, स्मृति, प्रथा, सामाजिक, वेद।

हिन्दू विधि का उद्भव वैदिक काल से ही माना जाता है। विधि का कार्य सामाजिक आवश्यकताओं और ध्येयों की पूर्ति करना है, यह अनिवार्य है कि विधि बदलती सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप हो। हिन्दू–विधि–व्यवस्था की श्रेष्ठता इसी में रही है कि बदली हुई समाज व्यवस्था के साथ–साथ इसका प्रवाह बदलता रहा है।

हिन्दू–विधि का प्रथम स्रोत वेद–वेदाङ्ग एवं उपनिषद् हैं। विधि शास्त्र में हिन्दू–विधि को ईश्वर प्रदत्त अर्थात् ईश्वर द्वारा मनुष्य को दिये गये आदेश और उपदेश के रूप में माना गया है। गौतम ने "वेदो धर्ममूलम् तद्विदां च स्मृतिशीले।"[1] कहकर स्पष्ट रूप से वेद को ही प्राथमिक प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। ध्यातव्य है कि वेद को धर्म का मूल मानने के पीछे का कारण वेद का अपौरुषेय होना है। स्मृतियाँ भी वेद पर आधारित होने के कारण प्रमाण हैं।

लौकिक विधियों यथा– उपनयन, शिक्षा, समावर्तन, विवाह, न्याय आदि के लिये समाज को आधार माना गया है। उनसे सम्बन्धित विधियों को आचार्यों द्वारा समय–समय पर समाज के विभिन्न वर्गों के लिए निर्धारित एवं व्यवस्थित किया जाता था। ये विधियाँ न तो सार्वकालिक होती थीं और न ही सार्वभौमिक। सामयाचारिक होने के कारण इनमें समय–समय पर देश–काल, परिस्थिति आदि के आधार पर परिवर्तन होते रहते थे। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में विधियों को निर्धारित करने वाले धर्मसूत्रों, धर्मप्रश्नों, स्मृतियों, पुराणादि ग्रन्थों की एक लम्बी शृंखला हो गयी है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

गौतम ने तो कृषक, व्यापारी, गोपालक, महाजन और शिल्पी को भी अपने–अपने वर्ग में प्रमाण स्वीकार किया है।[2] बौधायन तथा वशिष्ठ ने श्रुति और स्मृति के अभाव में शिष्ट जनों के आचरण, देश, जाति और कुल को भी प्रमाण माना है–

उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्। स्मार्तो द्वितीयः। तृतीयः शिष्टागमः।

तत्र तत्र देशप्रमाण्यमेवस्यात्।[3]

श्रुतिस्मृतिनिहितो धर्मः। तदलाभेशिष्टाचारः प्रमाणम्।

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान्श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः।[4]

आगे चलकर स्मृतिकार मनु ने वेद, स्मृति तथा श्रेष्ठ जनों के आचरण के अतिरिक्त अन्तरात्मा की प्रसन्नता (स्वयं का अभीष्ट आचरण) को भी विधि का स्रोत माना है। इस तरह जिन विषयों के सम्बन्ध में वेदादि ग्रन्थों में उल्लेख नहीं किया गया था, उन विषयों के सन्दर्भ में मनु ने व्यक्ति के अन्तरात्मा की प्रसन्नता को विधि का स्रोत मानकर इसे अत्यन्त व्यापक बना दिया है–

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।[5]

याज्ञवल्क्य के अनुसार वेद, स्मृति, सदाचार, जो स्वयं को उचित लगे तथा सम्यक् संकल्पों से उत्पन्न इच्छाएँ ये पाँचों हिन्दू–विधि के स्रोत हैं।[6] इन सभी के द्वारा धर्म–निर्णय न हो पाने की दशा में 'दशावरा परिषद्' को भी प्रमाण माना गया है। इन्हीं कारणों से विधि शास्त्री पारस दीवान ने हिन्दू विधि के स्रोतों को दो भागों में बाँटकर अध्ययन किया है[7]–

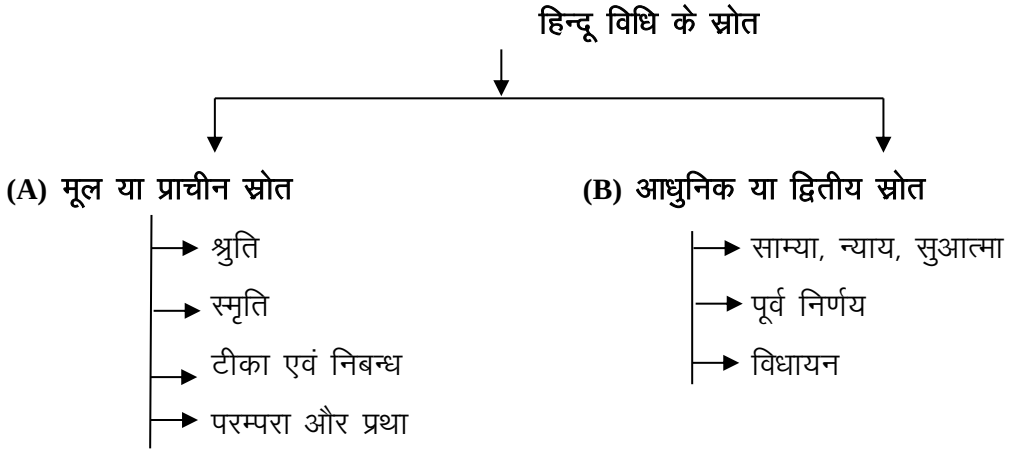

हिन्दू विधि के इन स्रोतों का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

मूल स्रोत (प्राचीन स्रोत)

श्रुति – 'श्रुति' का शाब्दिक अर्थ है– श्रवण किया हुआ। ईश्वर की वह वाणी जो हमारे ऋषि–मुनियों ने श्रवण की और हमें दी, श्रुति कहलाती है। श्रुति का ही दूसरा नाम वेद है। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ऋग्वेद ही प्राचीनतम और मुख्य वेद है, जिसमें व्यावहारिक विधि का आभास मिलता है। सामवेद केवल मन्त्र और प्रार्थना आदि का ही उल्लेख करता है। जहाँ तक यजुर्वेद का प्रश्न है इसमें यज्ञ, हवन आदि प्रक्रियाओं का उल्लेख है और अथर्ववेद में मन्त्र द्वारा सांसारिक सुख प्राप्त करने का प्रयास उल्लिखित है। इस प्रकार व्यावहारिक हिन्दू विधि का उल्लेख

केवल ऋग्वेद में मिलता है। इसमें तीन प्रकार के विवाह– ब्रह्म, असुर और गन्धर्व का उल्लेख है और पुत्र एवं पुत्राधिकार के सम्बन्ध में भी प्रावधान हैं।

ऋग्वेद में आर्य लोगों के जीवन–निर्वाह के तरीके, विचार और आचरण का वर्णन है। एक स्थान पर ऋग्वेद में लिखा है कि– जब आर्य इन्द्र की पूजा करते थे तो उससे प्रार्थना करते थे कि– "हे इन्द्र! हमें ऋत की राह पर ले चलो। वह राह जो सही राह है। जो हमारे पूर्वजों और वृहद् मानव ने बतायी है।"[8]

स्मृति – स्मृतियों के साथ विधि के क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित विकास के युग का आरम्भ होता है। इसीलिए स्मृतियों को भारतीय विधि का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। 'स्मृति' पद का शाब्दिक अर्थ स्मरण से है। ऐसा माना जाता है कि ईश्वर ने जो कुछ ऋषियों को उपदेश दिया, वह ऋषियों ने अपने शिष्यों और पुत्रों को दिया। चूँकि प्राचीन काल में लेखन का प्रचलन कम या फिर नहीं के बराबर था अतः याद्दाश्त के आधार पर ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त उपदेश पीढ़ी दर पीढ़ी एक ऋषि से दूसरे ऋषि तक स्थानान्तरित होते रहे और इन्होंने बाद में स्मृतियों का रूप ले लिया।

प्राचीन स्मृतियों (धर्म सूत्रों) में आपस्तम्ब, गौतम, बौधायन, हारीति, कात्यायन, अत्रि, अंगरीष, बृहस्पति, पराशर, व्यास, यम, वशिष्ठ और विष्णु आदि प्रमुख ऋषियों द्वारा लिखित स्मृतियाँ हैं। वहीं आधुनिक स्मृतियों में मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, पराशर आदि प्रमुख स्मृतियाँ हैं–

(i) मनुस्मृति – मनुस्मृति के आठवें अध्याय में व्यवहार यानि हिन्दू विधि को अट्ठारह विषयों में विभाजित करते हुए दीवानी और आपराधिक विधि को अलग–अलग बताया गया है। ये अट्ठारह विषय निम्न हैं–

1.	कर्ज की वसूली	2.	धरोहर और गिरवी
3.	स्वामित्व बिना विक्रय	4.	भागीदारी के सम्बन्ध
5.	दान	6.	मजदूरी का भुगतान न होने पर
7.	अनुबन्ध की अनुपालना	8.	क्रय–विक्रय का निरसन
9.	स्वामी–सेवक के बीच विवाद	10.	सीमा से सम्बन्धित विवाद
11.	प्रहार	12.	मनहानि
13.	चोरी	14.	दंगा एवं लूटपाट
15.	जारता	16.	पति–पत्नी के कर्त्तव्य
17.	विभाजन	18.	जुआ, शर्त आदि

मनुस्मृति में दण्ड को विशेष महत्त्व दिया गया है और कहा गया है, राजा दण्ड व्यवस्था द्वारा ही शासन कर सकता है। राजा को विधि से ऊपर स्थान प्राप्त नहीं है, विधि सर्वोपरि है। कुछ स्थानों पर मनु ने कट्टरपंथी विचारों और सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया है। स्त्री और शूद्रों के प्रति उनके विचार प्रायः कठोर थे। उन्हें सम्पत्ति का स्वामी भी नहीं

माना है। इस प्रकार यद्यपि मनुस्मृति के कुछ प्रावधान संकुचित और अव्यावहारिक हैं किन्तु वह मूल हिन्दू विधि की प्रथम दिग्दर्शिका है, इस बात में कोई सन्देह नहीं है।

(ii) याज्ञवल्क्य स्मृति – याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक संश्लेषणात्मक, संक्षिप्त, उदार और युक्ति–युक्त है। इसमें स्पष्ट रूप से हिन्दू विधि के सिद्धान्त और नियमों की विवेचना की गयी है। यह स्मृति शूद्र और स्त्रियों के प्रति भी उदार है और उन्हें सम्पत्ति पर सीमित स्वामित्व का अधिकार भी देती है।

टीका एवं निबन्ध – हिन्दू विधि के विकास में भाष्य, निबन्ध एवं टीकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्मृतियों में निर्धारित विधि के नियम और सिद्धान्त कहीं–कहीं अस्पष्ट थे और किन्हीं विषयों पर उनका नितान्त अभाव था। यही नहीं एक स्मृति दूसरी से भिन्न थी और कभी–कभी एक ही विषय पर विपरीत नियम प्रतिपादित करती थी।[9] कभी–कभी एक ही स्मृति में विरोधात्मक निर्णय थे, अतः यह आवश्यक था कि विधिक नियमों, सिद्धान्तों और संस्थाओं का विश्लेषण किया जाय, उन्हें आत्मसात किया जाय और सुव्यवस्थित रूप दिया जाय। यही कार्य टीकाकारों और निबन्धकारों ने किया।

मनुस्मृति पर मेधातिथि, गोविन्दराज, उल्लूकभट्ट, असहाय और विष्णु स्वामी ने टीकायें लिखी हैं, इनमें उल्लूकभट्ट की टीका हिन्दू विधि के नियमों की व्याख्या की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

याज्ञवल्क्य स्मृति पर भी बालक्रीड़ा (विश्वरूप), अपरादित्य (अपरार), वीरमित्रोदय (मित्रमिश्र), मिताक्षरा (विज्ञानेश्वर) आदि टीकायें लिखी गईं। इन टीकाओं में ग्यारहवीं सदी में लिखी गई विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा टीका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बंगाल और असम के कुछ भागों को छोड़कर अधिनियमित हिन्दू–विधि से पूर्व मिताक्षरा विधि ही लागू थी। प्रिवी कौंसिल ने बुधासिंह बनाम ललतुसिंह[10] के वाद में मिताक्षरा को हिन्दू–विधि की व्याख्या का मूल ग्रन्थ माना है।

परम्परा और प्रथा – हिन्दू विधि का चौथा प्राचीन स्रोत परम्परा है। कहीं–कहीं इसे सदाचार भी कहा गया है। कौटिल्य ने इसको चरित्र नाम दिया है। परम्परा वे नियम हैं जो किसी विशेष परिवार या प्रदेश में लम्बे समय से रीति के रूप में पालन की जा रही हैं और जिसने विधि की शक्ति प्राप्त कर ली है।[11] एक मान्य परम्परा जो विधि का स्थान लेना चाहती है, के लिए निम्न अर्हताओं का होना आवश्यक है–

1. **परम्परा प्राचीन होनी चाहिए**
2. **परम्परा के पालन में निरन्तरता होनी चाहिए**
3. **परम्परा निश्चित होनी चाहिए**
4. **परम्परा युक्तिसंगत होनी चाहिए**
5. **परम्परा में नैतिकता होनी चाहिए**
6. **परम्परा लोकनीति के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए**
7. **परम्परा विधि के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए**

आधुनिक स्रोत – हिन्दू विधि के वर्तमान स्रोत हैं – साम्या, न्याय, सु–आत्मा, पूर्वनिर्णय और विधान। इनका क्रमशः विवेचन इस प्रकार है–

साम्या, न्याय और सु–आत्मा – सन् 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट और उसके अन्तर्गत पारित 1774 के चार्टर एक्ट के द्वारा उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिया गया था कि यदि भारत में हिन्दू या मुस्लिम विधि के अन्तर्गत किसी विषय पर प्रचलित नियम नहीं मिल रहे तो न्यायालय साम्या, न्याय और स्वविवेक के आधार पर उस विषय पर निर्णय

दे सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दू वसीयत अधिनियम 1870 से पूर्व प्राचीन शास्त्रिक हिन्दू–विधि में किसी हिन्दू द्वारा अपनी सम्पत्ति का वसीयत से हस्तांतरण करने का कोई प्रावधान नहीं था फिर भी हिन्दू द्वारा अपनी सम्पत्ति को वसीयत से हस्तांतरित करने पर प्रिवीकौंसिल ने जितेन्द्र मोहन टेगौर बनाम ज्ञानेन्द्र मोहन टैगोर[12] के वाद में वैध माना था। गौतम स्मृति से भी यह आभास मिलता है कि जहाँ किसी विषय पर दस गणमान्य व्यक्ति अपना एक ही मत दें तो उसे उचित और स्वीकार्य माना जाय।[13]

बृहस्पति के अनुसार भी कोई निर्णय केवल शास्त्र के नियमों के अनुसार देना ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि जो निर्णय युक्तिहीन हैं उससे न्याय का हनन होता है।[14] याज्ञवल्क्य का भी मानना है कि यदि किसी विषय पर विरोधाभासी नियम हो तो उस विषय पर निर्णय द्वारा युक्ति देना चाहिए। इसी प्रकार कात्यायन का भी कथन है कि न्याय और युक्ति के प्रतिकूल कुछ भी मान्य नहीं होना चाहिये।

स्पष्ट है कि न्याय और युक्ति का सिद्धांत न केवल विधि की अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये किया गया है, बल्कि न्याय, युक्ति और सद्भावना के प्रतिकूल शास्त्रीय विधि के नियमों के अपखंडन के लिये भी किया गया है। इस सिद्धांत का प्रयोग विधि के कठोर नियमों की कठोरता को कम करने के लिये भी किया गया है। वर्तमान में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से विधान किया है कि हिन्दू–विधि में किसी नियम के अभाव में न्यायालय किसी भी वाद पर साम्या, न्याय और सु–आत्मा के अन्तर्गत निर्णय दे सकता है, यदि ऐसा करना हिन्दू विधि के किसी सिद्धांत के प्रतिकूल न हो।[15]

पूर्व निर्णय – न्यायिक निर्णय का यह महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय समस्त अधीनस्थ न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होंगे (अनु. 141) केवल उच्चतम न्यायालय ही अपने पूर्व निर्णयों को मानने के लिए बाध्य नहीं है और वह अनु. 137 के तहत अपने निर्णयों का न्यायिक पुनरावलोकन कर सकता है। वर्तमान में सभी निर्णयों को लिखित रूप में देने तथा उसे संरक्षित रखने की व्यवस्था है।

विधायन – विधायन हिन्दू–विधि का आधुनिक स्रोत है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दू–विधि जो कि प्रमुखतः असंहिताबद्ध थी, प्रमुख विषयों पर अधिनियमों द्वारा संहिताबद्ध कर दी गयी। यथा– हिन्दू–विवाह अधिनियम, 1955; हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956; हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम, 1956; हिन्दू दत्तक भरण–पोषण अधिनियम, 1956; दहेज प्रतिबंध अधिनियम, 1961; पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984; हिन्दू उत्तराधिकार संसोधन अधिनियम, 1905; हिन्दू–विवाह मान्यता अधिनियम, 1950 के तहत अन्तर्जातीय विवाह को मान्य किया गया। इस प्रकार हिन्दू–विधि के विविध स्रोत हैं जो हिन्दू विधि को एक दृढ़ आधार प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हिन्दू विधि एक–दो सदी में विकसित होने वाली विधि नहीं है। बल्कि यह काल के प्रवाह के साथ वैदिक युग से निरन्तर चली आ रही प्रक्रिया है। समाज में होने वाले बदलाव और सामाजिक आवश्यकतानुरूप इसमें अनेकानेक परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान हिन्दू विधि के संहिताबद्ध हो जाने पर भी कुछ विषयों (जो आज भी असंहिताबद्ध हैं) के सन्दर्भ में आज भी स्मृतियाँ और टीकायें प्रामाणिक बनी हुयी हैं।

सन्दर्भ

[1] *गौ. धर्म.* 1/1/1–2

[2] कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदिकारवः स्वे स्वे वर्गे। *गौ. धर्म.* 2/2/21

[3] *बौ. धर्म.* 1/1/1/1–4, 1/1/2/6

[4] *वशि. धर्म.* 1/4–5

[5] *मनु.* 2/12

[6] श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्व च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।। *याज्ञ.* 1/7

[7] *आधुनिक हिन्दू विधि,* पारस दीवान, पृ. 11

[8] *ऋ.* 8/40/1

[9] विरोधेत्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्। *जैमिनीय सूत्र* 1/3/3

[10] ए.आई.आर. 1915 पी.सी. 70

[11] हरप्रसाद बनाम शिवदयाल (1876)3 आई.ए. 259

[12] जितेन्द्र मोहन टैगोर बनाम ज्ञानेन्द्र मोहन टैगोर, ए.आई.आर. (1928), लाहौर 902

[13] *गौ. धर्म.* 2/28/48

[14] *बृह. धर्म.* 2/12

[15] गुरुनाथ बनाम कमलाबाई (1951)। सु.को. रिपोर्ट्स 1135